THE TIMES OF INDIA

Date:09-11-23

Reserving Poverty

Expanding quotas will not help Bihar end poverty. But GOI can help through finance commission.

TOI Editorials

Bihar on Tuesday presented granular economic data based on the state's caste survey. There were no surprises. The most important economic takeaway is that the survey's estimate of economically poor based on a monthly income of up to ₹6,000 is similar to a separate estimate of Bihar's multidimensional poverty based on NFHS 2019-21 by Niti Aayog. The caste survey estimated about 34% of families were economically poor while Niti Aayog said 33.8% of Bihar's population was poor.

The Nitish Kumar government has pegged the survey to economic empowerment. Following the release of economic data, the government said it would introduce legislation soon to enhance reservation to 65%, excluding the 10% for EWS. In addition, the state sought special category status to receive additional central transfers to combat poverty. Fighting poverty should be the state's primary goal and it deserves support. However, the approach is flawed. Bihar's primary problem is that the size of the economic pie is very small in relation to its population, which limits opportunities. Enhancing reservation will not address this problem. Moreover, legal precedents make it unlikely that it will breach the 50% barrier.

To illustrate why reservations are not the way forward, consider that Bihar's caste survey shows that even among most general category groups, cutting across religions, poverty is around 25%. Poverty undermines the potential to realise aspirations. Compare the extent of poverty among Bihar's relatively elite groups with Kerala's overall rate of multidimensional poverty, which was 0.55%. On average, regardless of identity, youth in Kerala stand a much better chance to realise their aspirations than a sizeable number of all categories of young people in Bihar. Increasing reservation quota won't help Bihar narrow the gap.

The Andhra Pradesh experience shows that asking for special category status is futile. However, GOI can quicken the pace of poverty reduction in Bihar through the terms of reference for the 16th finance commission, which is to be constituted soon. The resource advantage special category states receive is that they have to contribute a relatively low share of funding for centrally sponsored schemes. It's possible for FC to devise a formula whereby India's poorest states receive similar support. Tying it to GOI's anti-poverty schemes will create checks and balances in implementation. India needs more

effective approaches to reduce poverty and thereby empower its youth. Expanding quotas is not a solution.

THE ECONOMIC TIMES

Date:09-11-23

Stop Dilly-Dallying Honourable Guvs

ET Editorials

Earlier this week, a three-judge bench of the Supreme Court reminded governors that they are not elected representatives and must not delay acting on Bills that state legislatures send them for taking either one of the three steps: give assent to them, withhold assent, or reserve them. The bench also expressed anguish that elected state governments are being forced to approach the top court because many governors are not fulfilling their constitutional KRA. The apex court made this oral observation while hearing a petition filed by the Punjab government, challenging the inaction of governor Banwarilal Purohit on seven Bills. In recent months, Kerala, Tamil Nadu and Telangana have also approached the court with similar complaints about their respective governors.

This is not the first time the top court has reminded the state constitutional heads that Article 200 of the Constitution has defined the three options. Besides, Article 246(3) gives the legislatures exclusive power to make laws on subjects in the state and concurrent lists. If a governor returns a Bill to the legislature for its reconsideration and it is passed again by the House with or without amendment, then the governor cannot withhold consent. However, there is a loophole that is exploited: the Constitution is silent on a time frame to decide on giving assent.

This attitude of governors defeats the logic and reason of constitutional governance, and undermines law-making powers, an essential feature of democracy, of the elected representatives, besides impeding smooth governance. This is a huge disservice to those who come out to cast their votes and hope that their representatives will give shape to their hopes and aspirations within a specific time frame.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:09-11-23

आर्टिफिशल इंटेलिजेंस की चुनौती और हमारी तैयारी

अजित बालकृष्णन, (लेखक इंटरनेट उद्यमी हैं)

लगभग हर दो दशक की अवधि में मनुष्यों को ऐसी तकनीकी लहर का सामना करना पड़ता है जो हमारी मेधा और बचने के हमारे कौशल की सीमाओं का परीक्षण करती है। आर्टिफिशल इंटेलिजेंस (एआई) की मौजूदा लहर भी परीक्षा की ऐसी

ही घड़ी है। इन तकनीकी लहरों में कुछ बातें साझा होती हैं। जब ऐसी कोई तकनीकी लहर पहली बार आती है तो हममें से कुछ लोग इसकी तारीफ करने लगते हैं जबकि कुछ लोग यह सोचने लगते हैं कि आखिर ये लोग इन बातों में अपना और हमारा समय क्यों खराब कर रहे हैं। उसके बाद जब वह तकनीकी लहर जोर पकड़ जाती है तो हममें से विचारशील लोगों के मन में एक तरह की चिंता घर करने लगती है। एक बार इसके पूरी तरह जोर पकड़ जाने के बाद हम अपने आसपास देखते हैं और यह महसूस करते हैं कि हमें इसकी कितनी कीमत चुकानी पड़ रही है जबकि इसका कोई वास्तविक लाभ नहीं नजर आ रहा है। आखिर में जब समाज के सामने उस नई तकनीक के लाभ आने शुरू होते हैं तो हम उन बदलावों को अपनाने में संघर्ष करने लगते हैं जिनकी मदद से उस लहर से लाभ हासिल किया जा सके।

एआई से जुड़ी तकनीकी लहर (चैटजीपीटी उसका एक आरंभिक उदाहरण है) की बात करें तो इस समय वह दूसरे चरण में है जहां विचारक और नीति निर्माता नीतिगत निर्देश देने और विशेषज्ञ समितियां गठित करने में व्यस्त हैं। ताजा मामला अमेरिका का है जहां कुछ दिन पहले राष्ट्रपति जो बाइडन ने ऐसा ही एक निर्देश दिया। चूंकि यह निर्देश अमेरिका से आया था यानी एक ऐसे देश से जिसे तकनीकी लहरों को अपनाने में अग्रणी माना जाता है, इसलिए उसे खूब तरजीह दी जा रही है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री ऋषि सुनक ने भी कई देशों के समूह को ऐसे ही एक निर्देश पर चर्चा करने के लिए बुलाया है। अमेरिका और ब्रिटेन की चिंताओं में कुछ बातें साझा हैं: एआई का इस्तेमाल आतंकवादियों और साइबर अपराधियों द्वारा नहीं किया जाना चाहिए, ऐसे तरीके निकाले जाने चाहिए ताकि गलत खबरों और फर्जी तस्वीरों को पहचाना जा सके और सबसे बढ़कर उनके देशों को एआई की इस लड़ाई में पीछे भी नहीं छूटना चाहिए। लेकिन इस बात का अधिक उल्लेख नहीं है कि हमने अतीत की ऐसी ही तकनीकी लहरों से क्या सीखा और हमें किन अवसरों और खतरों के लिए तैयार रहना चाहिए। इस बारे में मैं जानकारी देता हूं।

ऐसी पहली तकनीकी लहर थी औद्योगिक क्रांति जो सबसे पहले इंगलैंड के मैनचेस्टर में 1750 के दशक में उभरी और फिर अगले 100 वर्षों तक समाज और पूरी दुनिया को प्रभावित किया। इसकी बदौलत ऐसी मशीनें बनीं जिन्होंने धागे की कताई और बुनाई शुरू की तथा मनुष्य तथा जानवरों की मदद से होने वाले काम की तुलना में कई गुना तेजी से कपड़ा बनना शुरू हो गया। इसके अलावा भाप इंजन के रूप में एक नया आविष्कार हुआ। निश्चित तौर पर इनके लिए प्रयास करने वाले उद्योगपतियों ने इसे क्रांति बताते हुए इसकी सराहना की लेकिन अन्य पर्यवेक्षकों मसलन मैनचेस्टर की यात्रा पर गए दो जर्मनों कार्ल मार्क्स और फेडरिक एंगेल्स ने माना कि यह मनुष्यों के समक्ष सबसे बुरी चीज घटित हुई है। उन्होंने इसके विरुद्ध एक वैश्विक आंदोलन संगठित किया-साम्यवाद। यह आज भी मौजूद है। औद्योगिक क्रांति ने जो कुछ किया उसके लिए उस समय उसकी बहुत कम ने सराहना की। इसने सूती कपड़ों को न केवल अमीरों के लिए सस्ता किया बल्कि पूरी दुनिया के लोगों को यह सहज उपलब्ध कराया। निश्चित रूप से मोहनदास गांधी जैसे राजनीतिक उद्यमियों ने कताई और बुनाई के काम आने वाले उपकरणों का इस्तेमाल भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को गति देने तथा अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए किया।

उसके बाद आई रासायनिक उद्योग की क्रांति की वजह से कृत्रिम नील जैसी चीजें बनाना संभव हुआ और कपड़ों को आकर्षक रंगों में रंगने की सुविधा मिली और फिर रसायनों के ज्ञान की बदौलत कृत्रिम रासायनिक धागे मसलन नायलॉन और पॉलिएस्टर का निर्माण संभव हो सका जिससे सस्ता कपड़ा बनना आरंभ हुआ। परंतु इन सबकी कीमत चुकानी पड़ी। इसका एक उदाहरण यह भी है कि 1950 के दशक में मुंबई को मध्य भारत का औद्योगिक केंद्र बनाने वाली 80 से अधिक कपड़ा मिलें 1980 के दशक तक बंद होने के कगार पर आ गईं क्योंकि वे अपने यहां निर्मित सूती कपड़े को बेच नहीं पा रही थीं। इसकी वजह से उनके लिए अपने 1.50 लाख कर्मचारियों को वेतन देना भी मुश्किल हो गया। इन

कर्मचारियों ने हड़ताल की और अंतत: ये मिलें बंद हो गईं। सभी विश्लेषक मिलों की बंदी के लिए श्रमिक संगठनों को जिम्मेदार ठहराते हैं और आज भी वे इसकी मूल वजह की अनदेखी करते हैं जो थी: रासायनिक क्रांति जिसने कृत्रिम पॉलिएस्टर और नायलॉन को साड़ी, धोती, कमीज, पैंट, चादर आदि के लिए सस्ता और लोकप्रिय विकल्प बना दिया। इसके साथ ही सूती का चलन बंद सा हो गया।

ऐसी अन्य तकनीकी लहर भी आई हैं और उनके साथ ऐसे ही लाभ-हानि जुड़े रहे हैं लेकिन फिलहाल उनकी बात रहने देते हैं और देखते हैं कि एआई क्रांति के दौर में हमारा सामना किन चीजों से हो सकता है। आइए औद्योगिक और रासायनिक क्रांति के उदाहरणों से सबक लेते हैं और यह सुनिश्चित करने का प्रयास करते हैं कि आखिर किन विशेषताओं को देखना है और किन्हें कम करने का प्रयास करना है। यह देखना होगा कि एआई किन उत्पादों या सेवाओं को किफायती बनाएगी और किन नौकरियों को बेमानी बना देगी?

क्या यह संभव है कि सेवाओं का जो पहला समूह सस्ता होगा वह चिकित्सक, अधिवक्ता, बैंकर, लेखक, फिल्मकार और स्कूल-कॉलेज शिक्षकों का समूह हो? क्या ये सेवाएं चैटबॉट के हवाले हो जाएंगी और अगले कुछ वर्षों में इनकी कीमत मौजूदा कीमत से काफी कम हो जाएगी? क्या इसका अर्थ यह होगा कि भारतीय नागरिकों के लिए ऐसी सेवाएं किफायती हो जाएंगी? यदि ऐसा होता है तो क्या इस बात की भी संभावना है कि इन पेशों की आय और आंकड़ों में नाटकीय कमी आएगी जैसा कि बुनाई-कताई करने वालों के साथ हुआ? क्या ये पेशे भारतीय मध्य वर्ग की रीढ़ नहीं हैं और क्या हम उन्हें एआई की क्रांति के खतरे का शिकार होने दे सकते हैं?

सबसे अधिक चिंता की बात यह है कि क्या इस उथलपुथल का भी तगड़ा प्रतिरोध होगा और पिछली तकनीकी क्रांतियों की तरह इसे लेकर भी बगावत होगी? या फिर समझदारी भरी नीतियां हमें यह सुविधा देंगी कि हम एआई की उत्पादकता से लाभ अर्जित कर सकें और शांतिपूर्ण बदलाव की दिशा में आगे बढ़ें।

जनसत्ता

Date:09-11-23

अवांछित दखल

संपादकीय

पहले एक सुविधा और अब जरूरत के तौर पर मोबाइल फोन ज्यादातर लोगों के पास है। इसके तमाम फायदे भी हुए हैं। लेकिन इसके समांतर एक बड़ी समस्या यह खड़ी हुई कि व्यक्ति के निजी मोबाइल पर ऐसे संदेश और फोन काल भी आने लगे, जिससे उसका कोई वास्ता नहीं होता। ऐसे काल या संदेश कई बार लोगों को परेशान कर देते हैं और उनके भीतर झल्लाहट भी पैदा होने लगती है। इसे रोकने के लिए समय- समय पर कुछ कदम उठाए गए, तकनीकी उपाय भी निकाले गए। लेकिन संगठित रूप से इसका कारोबार करने वाली कंपनियों या समूहों ने उससे अलग कोई नया तरीका निकाल लिया। दरअसल, तेजी से तकनीकी पर निर्भर होते समाज में लोगों के फोन नंबर और उनका ब्योरा हासिल करने के लिए अलग-अलग बहाने पेश कर दिए जाते हैं। आज किसी भी सामान की खरीदारी करने, सिनेमा देखने या किसी

सेवा का उपयोग करते हुए ज्यादातर जगहों पर गैरजरूरी तरीके से भी मोबाइल नंबर मांगा जाता है। यही वजह है कि आज भी लोगों के फोन पर अवांछित काल या संदेश आने बंद नहीं हुए हैं और लोग इसकी शिकायत करते हुए पाए जाते हैं।

अब भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण यानी ट्राइ ने एक बार फिर अवांछित संदेश और फोन काल से छुटकारा दिलाने के लिए नई पहल की है। इसके तहत वाणिज्यिक संचार के लिहाज से प्रमुख संस्थाओं में उपभोक्ताओं की सहमति को डिजिटल रूप में पंजीकृत करने के लिए ट्राइ ने एक मंच विकसित करने का निर्देश दिया है। सामान्य तौर पर ग्राहकों से हासिल की गई सहमति को संस्थानों के जरिए संभाल कर रखा जाता है, लेकिन इसके लिए कोई एक मंच नहीं होने की वजह से उनकी सत्यता की जांच में मुश्किलें पेश आती हैं। समस्या यह है कि वाणिज्यिक संचार के मकसद इस तरह की गतिविधियों के लिए अगर उपभोक्ताओं से सहमति ली भी जाती है तो उसमें वैसी बातें विस्तार से नहीं बताईं और समझाई जातीं, जो व्यक्ति के लिए परेशानी का कारण बन सकती हैं। इसलिए अगर ट्राइ के निर्देश के तहत उपभोक्ताओं के हित में कोई एक मंच तैयार किया जाता है तो उसमें शर्तों या नियमों को लेकर पूरी तरह स्पष्टता और पारदर्शिता सुनिश्चित की जानी चाहिए, ताकि लोग उसके नफा-नुकसान को आसानी से समझ सकें, उनके निजी ब्योरे का बेजा इस्तेमाल न हो।

हालत यह है कि निजी मोबाइल नंबर भी कुछ वाणिज्यिक कंपनियों के पास पहुंच जाते हैं और फिर अक्सर लोगों को फोन पर किसी कारोबार के लुभावने प्रस्ताव में फंसाने की कोशिश की जाती है या उससे संबंधित संदेश भेजे जाते हैं। ऐसा करते समय यह ध्यान रखना जरूरी नहीं समझा जाता कि व्यक्ति किस परिस्थिति में है। जबकि ऐसे ज्यादातर काल निजी कंपनियों की ओर से किसी वस्तु या व्यवसाय के प्रचार-प्रसार के लिए किए जाते हैं या फिर किसी बैंकिंग योजना में ऋण का आकर्षक और फायदेमंद प्रस्ताव देकर व्यक्ति को उसमें उलझाने के लिए। बहुत सारे वैसे लोग इस तरह की बातें या संदेश के प्रभाव में फंस भी जाते हैं और इसका पता उन्हें तब चलता है जब बाद में उन्हें किसी खास योजना में 'शर्तें लागू' की नियमावली को बताते हुए अप्रत्याशित रकम की मांग की जाती है। लगभग तेरह साल पहले 2011 में ट्राइ ने 'डू नाट डिस्टर्ब' सुविधा की शुरुआत की थी, जिसके तहत लोगों को अवांछित संदेशों और फोन काल से छुटकारा मिलने का आश्वासन दिया गया था। इसके बावजूद आज भी यह समस्या कायम है। तकनीक की सुविधा के साथ यह जरूरी है कि इसे परेशानी का कारण बनने से बचाया जाए।

Date:09-11-23

अनौपचारिक रोजगार बनाम सामाजिक सुरक्षा

जयंतीलाल भंडारी

इस समय देश में 'गिग' यानी अनौपचारिक श्रम को लेकर दो महत्त्वपूर्ण तथ्य उभर रहे हैं। एक तो इसमें रोजगार के मौके तेजी से बढ़ रहे हैं और दूसरे, इसमें सामाजिक सुरक्षा की भारी कमी दिखाई दे रही है। हालांकि देश में गिग श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 अधिनियमित हो चुकी है, लेकिन अभी तक प्रभावी नहीं है। यह संहिता सरकार को जीवन और विकलांगता सुरक्षा, दुर्घटना बीमा, स्वास्थ्य और मातृत्व लाभ, वृद्धावस्था सुरक्षा और क्रेच लाभ प्रदान

करने के लिए गिग श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजनाएं तैयार करने में सक्षम बनाती है। हालांकि गिग श्रमिकों को आमतौर पर कंपनियां अनुबंध के आधार पर काम पर रखती हैं, लेकिन उन्हें कर्मचारी नहीं माना जाता है। उन्हें वैसे लाभ नहीं मिलते, जो एक नियमित कर्मचारी को मिलते हैं। उनके लिए श्रम कल्याण परिलब्धियों जैसे पेंशन, ग्रेच्युटी आदि का प्रावधान नहीं हैं। गिग श्रमिक की वास्तविक समस्याओं को हल करने के लिए उनके पास कोई उचित शिकायत निवारण तंत्र उपलब्ध नहीं है। विभिन्न राज्यों द्वारा गिग सामाजिक सुरक्षा संहिता के संबंध में नियम बनाना अभी शेष है और बोर्ड की स्थापना के संबंध में भी अधिक कुछ नहीं किया गया है।

गिग अर्थव्यवस्था का मतलब है, अनुबंध आधारित या अस्थायी रोजगार वाली अर्थव्यवस्था। गिग अर्थव्यवस्था के तहत श्रमिक परियोजना-दर-परियोजना आधार पर अपनी सेवाएं देते हैं। व्यापक तौर पर कोविड-19 के बाद डिजिटलीकरण के प्रसार ने गिग अर्थव्यवस्था को अभूतपूर्व ऊंचाइयों पर पहुंचा दिया है। जहां शहरी क्षेत्रों में गिग श्रमिकों को अभी तक निर्माण, विनिर्माण, सामान पहुंचाने जैसे श्रम आधारित और कम योग्यता वाले कार्यों से जोड़ कर देखा जाता रहा है, वहीं अब इसके मौके 'वाइट कालर जाब' यानी ऐसे कामों में भी बढ़ रहे हैं, जहां उच्च स्तर के कौशल और शिक्षा की जरूरत होती है। कोविड-19 के बाद बड़ी संख्या में देश और दुनिया की कारोबार गतिविधियां आनलाइन हो गई हैं और घर से काम करने की प्रवृत्ति को व्यापक तौर पर मिली स्वीकार्यता से 'आउटसोर्सिंग' को बढ़ावा मिला है। उच्च स्तर के कौशल और शैक्षणिक योग्यता के साथ काम के ऐसे मौके ई-कामर्स, फिनटेक, हेल्थटेक, लाजिस्टिक्स, आतिथ्य, बैंकिंग, वित्तीय सेवा और बीमा क्षेत्रों में तेजी से बढ़ रहे हैं। गिग अर्थव्यवस्था के तहत आइटी, भर्ती, स्टाफिंग, शिक्षा और एडटेक जैसे क्षेत्रों में भी मौके बढ़ रहे हैं।

खास बात यह है कि गिग अर्थव्यवस्था के तहत अब महिलाएं भी पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही हैं, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था को तेजी से बढ़ावा मिल रहा है। महिलाओं की भागीदारी सभी क्षेत्रों में दिख रही है। कारोबार हो या वित्त-प्रबंधन, महिलाएं किसी में पीछे नहीं हैं। इसके साथ ही महिलाएं इस समय स्वतंत्र रूप से काम यानी 'फ्रीलांसिंग' में सबसे ज्यादा दिलचस्पी दिखा रही हैं। एक रपट के मुताबिक, अप्रैल से सितंबर 2023 के बीच गिग अर्थव्यवस्था में अस्सी हजार लोग काम कर रहे थे। इनमें तीस फीसद महिलाएं थीं। दरअसल, इस दौरान 'फ्रीलांसिंग' में महिलाओं की हिस्सेदारी 158 फीसद बढ़ी है।

निश्चित रूप से देश में शहरी रोजगार के मद्देनजर गिग श्रमिकों की मांग तेजी से बढ़ रही है। इसका अनुमान अक्तूबर 2023 में प्रकाशित कुछ भर्ती एजंसियों की रिपोर्ट से लगाया जा सकता है। इनके मुताबिक जहां पिछले वर्ष सितंबर से दिसंबर के बीच त्योहारी सीजन में करीब चार लाख गिग नौकरियां सृजित हुई थीं, वहीं इस साल सितंबर से दिसंबर के बीच ऐसी नौकरियों की संख्या सात लाख तक पहुंचने की उम्मीद है। खासकर मुंबई, दिल्ली, पुणे, बंगलुरु, हैदराबाद, कोलकाता, लखनऊ, इंदौर और चेन्नई सहित देश के छोटे-बड़े शहरों में प्रत्यक्ष और परोक्ष गिग नौकरियां निर्मित होती दिखाई देंगी।

गौरतलब है कि 'टीमलीज सर्विस' की रिपोर्ट में कहा गया है कि इस साल त्योहारी मौसम में जबरदस्त बिक्री का असर रोजगार क्षेत्र पर भी दिख रहा है। सभी ई-कामर्स कंपनियों की इस साल त्योहारी मौसम के लिए जबरदस्त तैयारी को देखते हुए टीमलीज ने गिग श्रमिकों की नौकरियों में 25 फीसद की बढ़ोतरी की संभावना जताई है। 'टीमलीज सर्विसेज' की रिपोर्ट के मुताबिक ई-कामर्स, रिटेल, लाजिस्टिक और एफएमसीजी जैसी कंपनियां बंगलुरु में गिग श्रमिकों की मांग में चालीस फीसद, चेन्नई में तीस फीसद तो हैदराबाद में भी तीस फीसद की बढ़ोतरी हो सकती है। टीमलीज के मुताबिक,

श्रेणी-2 और श्रेणी-3 शहरों में नई नौकरियां निकलने की अधिक संभावना है। जिन जगहों पर ई-कामर्स कंपनियों के गोदाम हैं, वहां भी गिग श्रमिकों की मांग में भारी बढ़ोतरी दिख रही है।

इस संबंध में नीति आयोग के आंकड़े भी महत्त्वपूर्ण हैं। उसके मुताबिक देश में करीब 44 करोड़ लोगों का श्रमबल है। इसमें 77 लाख गिग कर्मी हैं। ऐसे कर्मियों की संख्या तेजी से बढ़ने की उम्मीद जताई जा रही है। इसका कारण है कि गिग कर्मियों की व्यवस्था फिलहाल केवल शहरी क्षेत्रों में है और मुख्य रूप से ये सेवा क्षेत्र में सक्रिय हैं। इनका दायरा बढ़ेगा तो गिग कर्मियों की संख्या में भी बढ़ोतरी होगी। नीति आयोग के आकलन के अनुसार भारत में गिग श्रमिकों की संख्या 2030 तक बढ़कर 2.3 करोड़ के लगभग हो जाएगी। कंपनियां बड़ी संख्या में गिग श्रमिकों के लिए रोजगार के मौके बढ़ाने की तैयारी कर रही हैं। उल्लेखनीय है कि इन दिनों देश की तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था और रोजगार से संबंधित विषयों पर प्रकाशित हो रही विभिन्न रिपोर्टों में कहा जा रहा है कि देश में गिग अर्थव्यवस्था के कारण विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी की दर में तेजी से कमी आ रही है और रोजगार के नए मौके बढ़ रहे हैं।

मगर गिग श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा, खासकर भविष्य निधि और पेंशन, बीमा संबंधी सुरक्षा और लाभों के बारे में सोचना होगा। इस परिप्रेक्ष्य में हाल ही में नीति आयोग ने 'इंडियाज बूमिंग गिग ऐंड प्लेटफार्म इकोनामी' शीर्षक से एक रपट जारी की है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ गिग श्रमिकों और उनके परिवारों के लिए सामाजिक सुरक्षा उपायों का विस्तार करने की सिफारिश की गई, जिसमें बीमा और पेंशन जैसी योजनाएं शामिल हैं।

अब देश में गिग श्रमिकों के लिए ऐसी योजनाएं और नीतियां बीमा कंपनियों के साथ साझेदारी में आगे बढ़ानी होंगी, जो सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020 के तहत परिकल्पित हों। दुनिया के कई देशों में गिग श्रमिकों को 'श्रमिकों' के रूप में वर्गीकृत करके जो माडल लागू किया गया है, उस पर ध्यान देना होगा। देश में गिग श्रमिकों को केवल कुछ ही कंपनियां काम की जगह पर दुर्घटना बीमा प्रदान करती हैं, इसे सभी नियोक्ताओं द्वारा प्रदान किया जा सकता है। कामगारों को संकटपूर्ण समय या सेवानिवृत्ति के लिए बचत करने में मदद करना भी कंपनियों को गंभीरता से लेना होगा।

सरकार द्वारा शिक्षा, वित्तीय सलाह, विधिक कार्य, चिकित्सा या ग्राहक प्रबंधन क्षेत्रों जैसे उच्च कौशल गिग श्रमिकों के लिए ऐसी व्यवस्था सुनिश्चित करनी होगी, जिससे भारतीय श्रमिकों के लिए वैश्विक बाजारों तक पहुंच सुगम बनाई जा सके। इसके साथ ही, सामाजिक सुरक्षा लाभ प्रदान करने की जिम्मेदारी साझा करने के लिए निष्पक्ष और पारदर्शी तंत्र स्थापित करने के लिए सरकारों, गिग मंचों और श्रम संगठनों के बीच सहयोग की भी आवश्यकता होगी। निश्चित रूप से देश में अगर सामाजिक सुरक्षा की छतरी प्रदान की जाए, तो गिग श्रमिकों के रूप में काम कर रही देश की नई पीढ़ी के चेहरे पर मुस्कुराहट आ सकेगी और देश इनके अधिकतम योगदान से तेज विकास की डगर पर आगे बढ़ेगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:09-11-23

हर साल खराब हवा और खानापूर्ति

सोपान जोशी, (विज्ञान और पर्यावरण पत्रकार)

दिल्ली में सांस लेना दूभर हो गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने राजधानी की दूषित हवा का मामला अपनी अगुवाई में सुनना शुरू किया है। पर्यावरण की बातें किसी भी राजनीतिक दल के लिए चुनावी मुद्दा नहीं होतीं, इसलिए वे इनको टालने की कोशिश करते हैं, किंतु इस बार बाजी पलट चुकी है। न्यायतंत्र की सबसे शक्तिशाली पीठ ने तय कर लिया है कि साफ हवा केवल सरकारी नीति का मसला नहीं है, यह बुनियादी अधिकारों का मामला भी है। न्यायालय को यह ताकत मिली है पर्यावरण संरक्षण कानून (1986) से। न्यायाधीश आए दिन सरकारी अफसरों को फटकार लगा रहे हैं, बार-बार यह जता रहे हैं कि वायु प्रदूषण रोकने के लिए कारगर कदम उठाने ही पड़ेंगे। अब सत्ता-तंत्र को वे काम करने पड़ेंगे, जिनकी सलाह स्वतंत्र विशेषज्ञ दे रहे हैं।

यह बात सन 1996 से 2001 के बीच की है। न्यायालय में यह मामला सालों-साल चला। इससे दिल्ली में अपूर्व परिवर्तन हुए। डीजल से चलने वाली बसों और सार्वजनिक वाहनों को बंद किया गया। सार्वजनिक यातायात को सीएनजी पर डाला गया। दिल्ली में मेट्रो रेल बनाने में तेजी आई। बस कॉरिडोर बने। कई दूसरे बदलाव भी किए गए। दिल्ली की हवा साल 2000-2010 के दशक में बेहतर हुई। इस प्रयोग को खूब प्रशंसा भी मिली।

मगर अगले दशक में कहानी वापस वहीं पहुंच गई। हाल ही में शीर्ष अदालत ने सरकारी महकमों को फिर फटकार लगाई है। इतना खर्च उठाकर सार्वजनिक यातायात को बदलने के बाद हम कुछ वैसी ही जहरीली हवा में सांस ले रहे हैं, जैसी आबोहवा में 25 साल पहले लेते थे। हां, एक बड़ा अंतर आया है। पंजाब व हरियाणा जैसे राज्यों में फसल-कटाई के बाद जो पुआल या पराली बचती है, वह पहले पशुओं के चारे में काम आती थी, पर आज किसानों को उतने मवेशियों की जरूरत नहीं है, क्योंकि खेती के मशीनीकरण को बढ़ावा मिला है। आज गाय-बैल और सांड़ राजमार्गों और सड़कों के किनारे कचरे में मंुह मारते फिरते हैं। मवेशियों के चारे की कीमतें बढ़ चुकी हैं, पर किसानों के पास इतना धन नहीं है कि पुआल की हाथ से कटाई करके चारा बना सकें।

फसल कटाई का काम आज कम्बाइंड हारवेस्टर करते हैं। हमारे यहां बेचे जाने वाले हारवेस्टर जिस बनावट के हैं, उनसे फसल की बालियां ऊपर से कटती हैं। नतीजतन, लंबी संटी का पुआल नीचे छूट जाता है। किसानों के लिए लागत कम रखने का आसान तरीका यही है कि इसे जला दें। अब तक इस पर ध्यान नहीं गया है कि हारवेस्टर की बनावट में ऐसे बदलाव किए जाएं, जो फसल को नीचे से काट सकें।

हां, प्रदूषण के स्रोत को लेकर नाना प्रकार की छींटाकशी जरूर हो रही है। अपने आप को किसानों का हितैषी बताने वाले कहते हैं कि पड़ोसी राज्यों में पुआल जलाने से दिल्ली के प्रदूषण में बहुत हल्की बढ़ोतरी होती है, इसके असली कारण कुछ और हैं। किसी को बारूदी आतिशबाजी में मासूमियत दिखती है, धार्मिक उत्सवप्रियता भी! ऐसी बहसबाजी आसान है। जबकि, यह सभी जानते हैं कि मौसमी बुखार की तरह यह समस्या अगले साल भी आएगी। ऐसी ही बहसें फिर से होंगी, क्योंकि असली सवाल पर हमारा ध्यान जाता ही नहीं है। हम इस समस्या का निदान और हल क्यों नहीं निकाल पाते? इतने वर्षों में इतने सारे साधन लगाने और कष्ट उठाने के बाद भी? याद रखिए, राजधानी से अधिक साधन कहीं नहीं हैं, यहां से ज्यादा ध्यान किसी दूसरी जगह पर नहीं जाता। अगर दिल्ली में इसका उपाय नहीं है, तो दूसरे शहर क्या करेंगे? विश्व के सबसे प्रदूषित नगरों में भारत के शहर शीर्ष स्थानों पर आते हैं।

कारण? पर्यावरण से जुड़े सभी मामले बेहद पेचीदा होते हैं। हमारा कुल ज्ञान हमारे आस-पास से आता है, लोगों पर आधारित होता है। तभी तो जिसकी जैसी मान्यता हो, वह प्रदूषण का ठीकरा उसी हिसाब से फोड़ता है। पर्यावरण की समस्याएं हमारे ज्ञान ही नहीं, किस्से-कहानियों की कल्पनाओं से भी बड़ी हैं। इन्हें जानने-समझने में ढेर सारा धीरज लगता है, खूब सारी साधना लगती है, अपने ज्ञान-अज्ञान के प्रति विनम्रता चाहिए होती है।

राजनीति के लिए यह सब बेकार की बातें हैं। तभी दुनिया भर की सरकारें पर्यावरण को बिगड़ने से रोकने में रुचि नहीं रखतीं। वे केवल खानापूर्ति करती हैं। राजनेताओं को यह ठीक से पता है कि पर्यावरण की समस्याओं को सुलझाने के लिए क्या करना जरूरी है, लेकिन उन्हें यह नहीं पता कि अगला चुनाव कैसे जीतें? राजनीतिक दलों का अस्तित्व चुनाव से है। उनके लिए यह भुलाए रहना बड़ा आसान है कि हम सभी का अस्तित्व पर्यावरण से ही है। राजनीति की दृष्टि संकीर्ण और अल्पकालिक होती है, चाहे वह नैतिकता की कितनी ही बड़ी-बड़ी बातें क्यों न करे।

पर्यावरण की समस्याएं दशकों में, शताब्दियों में बनती हैं। उनको ठीक करने के लिए उतनी ही लंबी साधना करनी पड़ती है, अपने ज्ञान की सीमा के प्रति विनम्रता बरतनी पड़ती है। इस दौरान बहुत से चुनाव आ जाते हैं। हर चुनाव के लिए औद्योगिक विकास के कई वादे हर दल को करने पड़ते हैं। चुनाव का चंदा पाने के लिए उद्योगों के एहसान उठाने पड़ते हैं। तभी तो लोगों की पाई-पाई का हिसाब रखने वाली व्यवस्था न्यायालय के सामने यह कहती है कि नागरिकों को राजनीतिक चंदे का स्रोत जानने का अधिकार नहीं है। जीतने वाले दलों को चंदा देने वाले उद्योगों को प्राकृतिक संसाधन सौंपने ही पड़ते हैं, चाहे उससे समाज और पर्यावरण का कितना भी नुकसान क्यों न हो?

हमारे लोकतंत्र का सच यही है। इसे न तो कोई नीति बदल सकती है, और न बड़े से बड़ा अदालती निर्देश। इसे बदलने के लिए जो जोखिम उठाने पड़ेंगे, उसके लिए हमारी राजनीति तैयार नहीं है। हम तैयार नहीं हैं। जहरीली हवा में सांस लेना कितना भी खतरनाक क्यों न हो, हमारी राजनीति के लिए यह एक अल्पकालिक मौसमी असुविधा भर है। सुविधाओं के विकास की छोटी-सी कीमत! जब तक हम यह कीमत चुकाने के लिए तैयार रहेंगे, तब तक हर मौसम की पर्यावरण की त्रासदी चलती रहेगी। बाढ़, सूखा, भूस्खलन, लू, शीत लहर, वायु प्रदूषण... यह हमारे गलत आर्थिक विकास का नया ऋतु चक्र है।

Date:09-11-23

भूख की भ्रामक वैश्विक रैंकिंग को नजरअंदाज किया जाए

सौम्य कांति घोष, (मुख्य आर्थिक सलाहकार, एसबीआई और साथ में अर्थशास्त्री अनुराग चंद्रा)

भारत ने छह वर्ष तक के बच्चों के पोषण और स्वास्थ्य में सुधार लाने के लिए एक विशेष कार्यक्रम की शुरुआत की है। यह कार्यक्रम उनके उचित मनोवैज्ञानिक, शारीरिक और सामाजिक विकास की नींव रखता है। भारत कम वजन वाले बच्चों की तेजी से पहचान करने, उनमें बौनेपन और कमजोरी की पहचान करने, पोषण सेवा वितरण की अंतिम पहुंच तक निगरानी करने के लिए एक महत्वाकांक्षी पोषण प्रौद्योगिकी- पोषण ट्रैकर का भी लाभ उठा रहा है। भले ही भारत स्वास्थ्य के क्षेत्र में तेजी से प्रगति कर रहा है, लेकिन विरोधाभासी रूप से ग्लोबल हंगर इंडेक्स (जीएचआई) ने भारत को 125 देशों में 111वें स्थान पर रखा है, यानी भारत को निचले 15 देशों में शुमार किया गया है। इसके अलावा, विश्व प्रसन्नता सूचकांक में भी भारत 136 देशों की सूची में 126वें स्थान पर है, फिर से निचले 15वें स्थान पर है। दिलचस्प बात यह है कि फलस्तीन 99वें स्थान पर है।

एक पल के लिए ऐसी रैंकिंग को भूल जाएं और इसके बजाय भूख के पैमाने पर भारत की प्रगति को देखें। विश्व की ही गति से भारत में भी भुखमरी कम हो रही है। विश्व में जीएचआई स्कोर साल 2000 में 28 से घटकर 2023 में 18.3 हो गया है। इसकी तुलना में भारत ने भूख को साल 2000 में 38.4 से घटाकर साल 2023 में 28.7 कर दिया है। इस प्रकार, भारत और दुनिया, दोनों ने भूख में 9.7 अंकों की कमी की है। दिलचस्प है कि साल 2010 के बाद भारत ने दुनिया की तुलना में ज्यादा तेजी से भुखमरी कम की है।

इसके अलावा, अगर जीएचआई स्कोर को पोषण ट्रैकर के आधार पर मापा जाए, तो पांच साल से कम उम्र की श्रेणी में 'स्टंटिंग' और पांच साल से कम उम्र में 'वेस्टिंग' के मोर्चे पर भारत की रैंक कम से कम 20 स्थान तक ऊपर आ सकती है। यहां सवाल उठता है कि आखिर 'ग्लोबल हंगर इंडेक्स' मापने के लिए भारत के इस आंकड़े का उपयोग क्यों नहीं किया गया है? 'स्टंटिंग' मतलब अपनी उम्र से कम दिखना, यानी बौनापन और 'वेस्टिंग' का मतलब होता है, बढ़ती उम्र के साथ कमजोर होते चले जाना या लंबाईके मुकाबले कम वजन, भारत इन दोनों ही मोर्चों पर उतना खराब नहीं है, जितना उसे बताया जाता है।

आखिर जीएचआई को कैसे मापा जाता है? पहला पैमाना, जनसंख्या में अल्पपोषितों का अनुपात; दूसरा, पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर; तीसरा, पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों का समय के साथ कमजोर होते जाना और चौथा, पांच साल से कम उम्र में स्टंटिंग, यानी अपनी उम्र से कमतर दिखना। अल्पपोषण का अनुपात ही पूरी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाला एकमात्र कारक है, जबकि शेष तीन कारक पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों के आधार पर तय किए जाते हैं।

यदि अकेले अल्पपोषण पर विचार किया जाए, तो 2023 जीएचआई स्कोर में कम से कम 41 देश भारत से पीछे हैं। पांच साल से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर के मामले में भी 56 देश भारत से पीछे हैं। जीएचआई पद्धति भारत को पांच साल से कम उम्र के बच्चों में स्टंटिंग और वेस्टिंग के मामले में फिसड्डी दिखाती है। क्या बौनापन या दुबलापन

वास्तव में भूख या कुपोषण की वजह से ही होता है? क्या इसमें आनुवंशिकी भी प्रमुख भूमिका नहीं निभाती है? वास्तव में, 60 से 80 प्रतिशत लंबाई के लिए अकेले जीन जिम्मेदार हैं। उम्र के हिसाब से लंबाई की तुलना करना सेब की तुलना संतरे से करने के समान है। इसके बजाय, एक समूह के भीतर ही ऊंचाई या बौनेपन या दुबलेपन की तुलना होनी चाहिए। पांच साल से कम उम्र में वेस्टिंग के मामले में भारत को जीएचआई सैंपल में सबसे नीचे रखा गया है, लेकिन पोषण ट्रैकर के आधार पर देखें, तो दुनिया के 38 देश भारत से पीछे हैं।

अगर ईमानदार आकलन किया जाए, तो निश्चित रूप से भूख के मामले में हम खुद को नीचे के बजाय बीच में पाएंगे। जीएचआई जैसे आकलन न केवल भ्रम पैदा करते हैं, बल्कि हमारे यहां दशकों से चल रहे प्रयासों को कमजोर भी करते हैं, इसलिए हमें ऐसे सूचकांकों या रैंकिंग से परेशान हुए बिना पोषण सुधार की दिशा में सकारात्मक रूप से काम करते रहना चाहिए।